ॐ

राजरत्न

भक्ति व तत्त्वश्रद्धान का समन्वय करते हुए
श्रीमद् राजचंद्र जी रचित पद्य व गद्य का संकलन

Shrimad Rajchandra Mission, Delhi
a Spiritual Revolutionary Movement

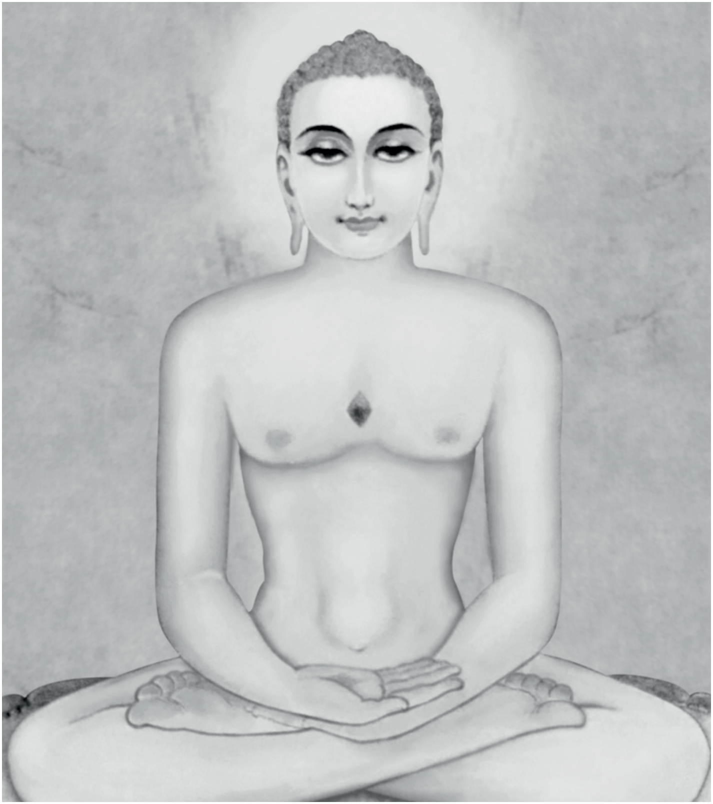

वीतराग परमात्मा

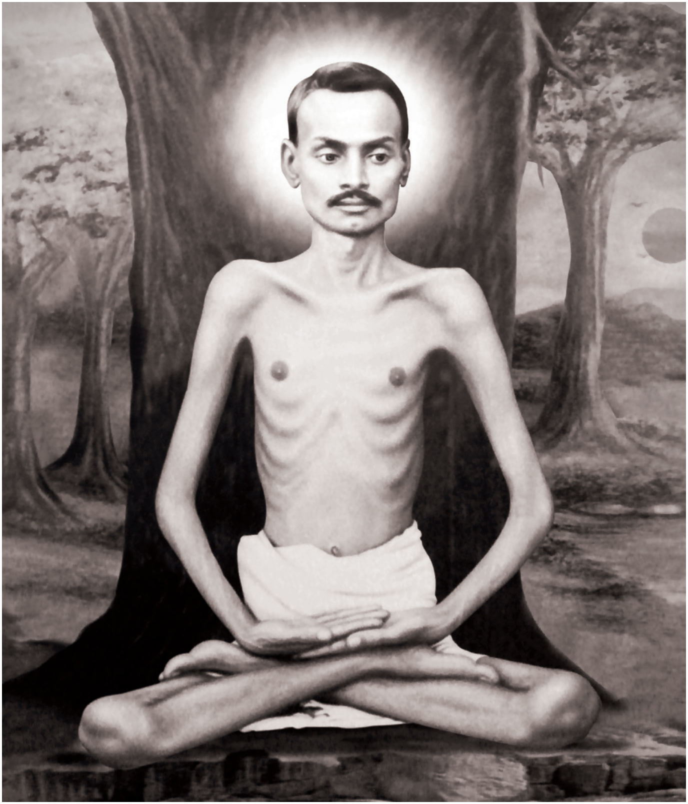

श्रीमद् राजचंद्र जी (1867 - 1901 A.D.)

श्री बेन प्रभु

नित्य स्मरणीय यह 18 पद हमारे भक्ति-भाव को स्वसन्मुख रखने में आधारभूत है। **हे प्रभु!, क्षमापना, यम-नियम** आदि पाठ से निज अवलोकन की दृढ़ता आती है तो **श्री आत्मसिद्धि** के पारायण से तत्त्व निष्ठा प्रकटती है। **अपूर्व अवसर** वैराग्य को प्रगाढ़ कर के गुणस्थान आरोहण का भाव प्रगाढ़ करता है तो **मारग साचा** में सत्-मार्ग प्राप्ति का उल्लास प्रकटता है।

इन पदों का स्तुति-गान व गद्य का विचारपूर्वक अवलोकन हमारे जीवन में आत्मरमणता का मार्ग दृढ़ करता रहे...

– श्री बेन प्रभु

Published by

Shrimad Rajchandra Mission, Delhi

a Spiritual Revolutionary Movement

Year: 2017

Printed by

Manifold Graphics

A1/52, Shah & Nahar Ind. Estate, S.J. Road

Lower Parel (W), Mumbai – 400013

अनुक्रम

1) मंगलाचरण 3
2) जिनेश्वर वाणी 6
3) प्रातःकाल देववंदन 7
4) श्री अमूल्य तत्त्व विचार 13
5) निज दोष अवलोकन काव्य......15
6) कैवल्य-बीज क्या?................20
7) सांयकालीन देववंदन 23
8) श्री आत्मसिद्धि शास्त्र 31
9) अपूर्व अवसर काव्य 61
10) जड़ चेतन विवेक....................69
11) अंतिम उपदेश.........................72
12) श्री सद्गुरु कृपा माहत्म्य..........75
13) प्रणिपात स्तुति.........................77
14) मारग साचा मिल गया..............79
15) वीतराग का कहा धर्म...............81
16) सम्यक् दर्शन-स्वरूप में रुचि....83
17) क्षमापना................................85
18) उपासना की अखंड जागृति.......87

1
मंगलाचरण

अहो श्री सत्पुरुष के वचनामृतम् जगहितकरम्।
मुद्रा अरु सत्समागम, सुप्त चेतना जागृतकरम् ।।1।।

गिरती वृत्ति स्थिर रखे, दर्शन मात्र से निर्दोष है।
अपूर्व स्वभाव के प्रेरक, सकल सद्गुण कोष है ।।2।।

स्वस्वरूप की प्रतीति, अप्रमत्त संयम धारणम्।
पूरणपणे वीतराग निर्विकल्पता के कारणम् ।।3।।

अंत में अयोगी स्वभाव जो तुमसा प्रकट करतार है।
अनंत अव्याबाध स्वरूप में, स्थिति करावनहार है ।।4।।

सहजात्म सहजानंद आनंदघन ये नाम अपार है।
सत् देव, धर्म, स्वरूप दर्शक, सुगुरु पारावार है ।।5।।

गुरुभक्ति से ग्रहो तीर्थपति पद, शास्त्र में विस्तार है।
त्रिकाल जयवंत वर्तो श्री गुरुराज को नमस्कार है ।।6।।

यूँ नमूँ श्री गुरुराज के पद, आप परहित कारणम्।
जयवंतश्री जिनराज-वाणी, करुँ वह उच्चारणम् ।।7।।

भवभीत भविक जो पढ़े, भाव से सुने, समझे श्रद्धे।
श्री रत्नत्रय की एकता ग्रहे, और निजपद अनुभवे ।।8।।

ॐ

परम कृपालु मुनिवर्य के चरणकमल में परम भक्ति से सविनय नमस्कार प्राप्त हो।

अहो सत्पुरुष के वचनामृत, मुद्रा और सत्समागम! सुषुप्त चेतना को जागृत करने वाले, गिरती वृत्ति को स्थिर रखने वाले, दर्शन मात्र से भी निर्दोष, अपूर्व स्वभाव के प्रेरक, स्वरूप प्रतीति, अप्रमत्त संयम और पूर्ण वीतराग निर्विकल्प स्वभाव के कारणभूत - अंत में अयोगी स्वभाव प्रगट करके अनंत अव्याबाध स्वरूप में स्थिति कराने वाले! त्रिकाल जयवंत रहें।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः!

2

जिनेश्वर वाणी

अनंत अनंत भाव भेद से जो भरी है,
अनंत अनंत नय निक्षेप से जो कही है;
समस्त जगत हितकारिणी, हारिणी मोह,
तारिणी भवाब्धि, मोक्षचारिणी प्रमाणी है ।।1।।

उपमा देने की जिसकी सभी कोशिश व्यर्थ है,
देने से तो निज मति, नापी मैंने मानी है;
अहो! राजचन्द्र, बाल ख्याल नहीं पाते ये,
जिनेश्वर प्रभु वाणी जानी उसने जानी है ।।2।।
(गुरुराज की ये वाणी जानी उसने जानी है।)

3

प्रातः कालीन स्तुति - देववंदन

महादेव्याः कुक्षिरत्नं, शब्दजीतरवात्मजम्।
राजचन्द्रम् अहम् वंदे, तत्त्वलोचनदायकम् ||1||

जय गुरुदेव! सहजात्मस्वरूप परम गुरु शुद्ध चैतन्य स्वामी ||2||

ॐ कारं बिंदु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐ काराय नमोनमः ||3||

मंगलमय मंगलकरण, वीतराग विज्ञान।
नमूँ ताहि जाते भये, अरिहंत आदि महान ||4||

विश्वभाव व्यापि तदपि, एक विमल चिद्रूप।
ज्ञानानंद महेश्वरा, जयवंता जिनभूप ।।5।।

महत्तत्व महनीय महः महाधाम गुणधाम।
चिदानंद परमात्मा, वंदो रमताराम ।।6।।

तीनभुवन चूड़ारतन, सम श्री जिन के पाय।
नमत पाइये आप पद, सब विधि बंध नशाय ।।7।।

नमूं भक्तिभावे ऋषभ, जिन शांति अघ हरो।
तथा नेमि पार्श्व प्रभु, मम सदा मंगल करो ।।8।।

महावीर स्वामी, भुवनपति काटो कुमति को।
जिन शेष जो हैं सकल, देना मुझ सुमति को ।।9।।

अर्हंतो भगवंत इंद्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिताः
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्री सिद्धान्त सुपाठका मुनिवरा, रत्नत्रयाराधकाः
पंचै ते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥10॥

भक्तामर - प्रणत - मौलि - मणि - प्रभाणा -
मुद्योतकं दलित - पाप - तमो - वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिनपाद - युगं युगादा
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥11॥

यः संस्तुतः सकल - वाङ्मय - तत्त्वबोधा -
दुद्भूत बुद्धि - पटुभिः सुरलोक नाथैः।
स्तोत्रेर्जगत् त्रितय चित्त - हरै रुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥12॥

दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम् ।।13।।

दर्शनाद् दुरितध्वंसि, वंदनाद् वांच्छितप्रदः।
पूजनात् पूरकः श्रीणां, जिनः साक्षात् सुरद्रुमः ।।14।।

प्रभुदर्शन सुखसंपदा, प्रभुदर्शन नवनिधि।
प्रभुदर्शन से पाइये, सकल मनोरथ - सिद्धि ।।15।।

जीवों जिनवर पूजिये, पूजा के फल होय।
राज नमे प्रजा नमे, आज्ञा न लोपे कोय ।।16।।

कुंभ में रहता जल है, जल बिन कुंभ न होय।
ज्ञान से बंधता मन है, गुरु बिन ज्ञान न होय ।।17।।

गुरु दीपक गुरु देवता, गुरु बिन घोर अंधकार।
जो गुरुवाणी न मिले, भटकत हैं संसार ।।18।।

तन से मन से वचन से, देत न कोई दुःख।
कर्म रोग पातिक जरे, निरखत सद्गुरु मुख ।।19।।

तरुवर से फल गिर पड़ा, बुझी न मन की प्यास ।
गुरु छोड़ी गोविन्द भजे, मिटे न गर्भावास ।।20।।

भाव से जिनवर पूजिये, भाव से दीजे दान ।
भाव से भावना कीजिये, भाव से केवल ज्ञान ।।21।।

त्वं माता त्वं पिता चैव, त्वं गुरुस्त्वं बांधवः
त्वमेकः शरणं स्वामिन्, जीवितं जीवितेश्वरः ।।22।।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव भ्राता च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव देव ।।23।।

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज जन्माभिषेकोत्सवे
यद् दीक्षा ग्रहणोत्सवे यदखिल ज्ञान प्रकाशोत्सवे
यन्निर्वाण गमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद् भवैः
संगीत स्तुति मंगलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः ।।24।।

4

श्री अमूल्य तत्त्व विचार

बहु पुण्य पुंज प्रसंग से, शुभ देह मानव का मिला
तो भी अरे भवचक्र का, फेरा न एक कभी टला।
सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुख जाता दूर है
तू क्यों भयंकर भावमरण, प्रवाह में चकचूर है ॥1॥

लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिए
परिवार और कुटुम्ब है क्या, वृद्धि नय पर तोलिए।
संसार का बढ़ना अरे, नर देह की यह हार है
नहीं एक क्षण तुझको अरे, इसका विवेक विचार है ॥2॥

निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द, लो जहाँ भी प्राप्त हो
यह दिव्य अंतःतत्त्व जिससे, बन्धनों से मुक्त हो।
परवस्तु में मूर्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया
वह सुख सदा ही त्याज्य है, पश्चात् जिसके दुःख भरा ।।3।।

मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? और मेरा स्वरूप क्या?
संबंध दुःखमय कौन है, स्वीकृत करुँ परिहार क्या?
इसका विचार विवेकपूर्ण शांत हो कर कीजिए
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के सिद्धान्त का रस पीजिए ।।4।।

किसका वचन उस तत्त्व की, उपलब्धि में शिवभूत है
निर्दोष नर का वचन है, यह स्वानुभूति प्रसूत है।
तारो अरे! तारो निजात्मा! शीघ्र अनुभव कीजिए
'सर्वात्म में समदृष्टि दो', यह वचन हृदय लिख लीजिए ।।5।।

5

निज-दोष अवलोकन काव्य

हे प्रभु! हे प्रभु! क्या कहूँ, दीनानाथ दयाल;
मैं तो दोष अनन्त का, चाहूँ अब कल्याण ।।1।।

शुद्ध भाव मुझमें नहीं, नहीं सर्व तुझ रूप;
नहीं लघुता या दीनता, क्या कहूँ परम स्वरूप? ।।2।।

नहीं आज्ञा गुरुदेव की, अचल की उर में ही;
आप वचन विश्वास दृढ़ और परमादर नहीं ।।3।।

योग नहीं सत्संग का, नहीं सत् सेवा योग;
केवल अर्पणता नहीं, नहीं आश्रय अनुयोग ।।4।।

'मैं पामर क्या कर सकूँ?' ऐसा नहीं विवेक;
शरणागत तुझ चरण की, नहीं अंत समय तक एक ।।5।।

अचिन्त्य आपकी महिमा का, नहीं प्रफुल्लित भाव;
अंश न एक स्नेह का, न मिले परम प्रभाव ।।6।।

अचल रूप आसक्ति नहीं, नहीं विरह का ताप;
कथा अलभ्य तुझ प्रेम की, नहीं उसका परिताप ।।7।।

भक्तिमार्ग प्रवेश नहीं, नहीं भजन इक तान;
समझ नहीं निज धर्म की, नहीं शुभ देश में स्थान ।।8।।

काल दोष कलियुग भयो, नहीं मर्यादा धर्म
तो भी नहीं व्याकुलता, कैसा प्रभु मुझ कर्म ||9||

सेवा को प्रतिकूल जो, वो बंधन नहीं त्याग;
देह इन्द्रिय माने नहीं, करे बाह्य पर राग ||10||

तुझ वियोग स्फुरता नहीं, वचन नयन यम नाहीं;
नहीं उदास अन भक्त से, त्यों ही गृहादिक से ही ||11||

अहंभाव से रहित नहीं, स्वधर्म संचय नाहीं;
नहीं निवृत्ति भी होत है, अन्य धर्म से कोई ||12||

ऐसे अनंत प्रकार से साधन रहित हूँ मैं;
नहीं एक भी सद्गुण है; मुख बताऊं क्या? ||13||

केवल करुणामूर्ति हो दीनबंधु दीननाथ;
पापी परम अनाथ हूँ, ग्रहो प्रभुजी हाथ ||14||

अनंत काल से भटक रहा, बिना भान भगवान;
जाना नहीं गुरु संत को, छूटा नहीं अभिमान ||15||

संत चरण आश्रय बिना, साधन किए अनेक;
पार न उनसे लग सका, उगा न अंश विवेक ||16||

सब साधन बंधन हुए, रहा न कोई उपाय;
सत् साधन समझा नहीं, तो बंधन क्या जाय? ||17||

प्रभु प्रभु लय लागी नहीं, पड़्यो न सद्गुरु पाय;
देखा नहीं निज दोष तो, तरूँ अब कौन उपाय? ||18||

अधमाधम सबसे पतित, सकल जगत में हूँ;
यह निश्चय आए बिना, साधन करेंगे क्या? ॥19॥

पड़ी-पड़ी तुझ पद पंकजे, माँगूँ बारम्बार;
सद्‌गुरु संत स्वरूप की, दृढ़ता करे भवपार ॥20॥

6

"कैवल्य - बीज क्या?"

यम - नियम संजम आप कियो,
पुनि त्याग बिराग अथाग लह्यो।
वनवास लियो मुख मौन रह्यो,
दृढ आसन पद्म लगाय दियो ||1||

मन पौन निरोध स्वबोध कियो,
हठजोग प्रयोग सु तार भयो।
जप भेद जपे तप त्यौंहि तपे,
उर से हि उदासी लही सब पे ||2||

सब शास्त्रन के नय धारि हिये,
मत मंडन खंडन भेद लिये।
वह साधन बार अनंत कियो,
तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो ।।3।।

अब क्यों न विचारत है मन से,
कछु और रहा उन साधन से?
बिन सद्‌गुरु कोय न भेद लहे,
मुख आगल हैं कह बात कहे? ।।4।।

करुणा हम पावत है तुमकी,
वह बात रही सुगुरु गम की।
पल में प्रगटे मुख आगल से,
जब सद्‌गुरु चरन सुप्रेम बसे ।।5।।

तन से, मन से, धन से, सबसे,
गुरुदेव की आज्ञा स्वआत्म बसे।
तब कारज सिद्ध बने अपनो,
रस अमृत पावहि प्रेम घनो ||6||

वह सत्य सुधा दरशावहिंगे
चतुरांगुल हे दृग से मिलहे।
रस देव निरंजन को पिवही,
गहि जोग जुगोजुग सो जीवही ||7||

पर प्रेम प्रवाह बढ़े प्रभु से,
सब आगम भेद सुउर बसे।
वह केवल को बीज ज्ञानी कहे,
निज को अनुभव बतलाई दिये ||8||

7

सायंकालीन देववंदन

महादेव्याः कुक्षिरत्नं शब्दजीतरवात्मजम्
राजचन्द्रम् अहं वंदे तत्त्वलोचनदायकम् ।।1।।

जय गुरुदेव! सहजात्मस्वरूप परम गुरु शुद्ध चैतन्य स्वामी ।।2।।

ॐकारं बिंदु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमो नमः ।।3।।

मंगलमय मंगलकरण, वीतराग विज्ञान
नमो ताहि जाते भये, अरिहंत आदि महान ।।4।।

विश्वभाव व्यापि तदपि, एक विमल चिद्रूप
ज्ञानानंद महेश्वरा, जयवंता जिनभूप ।।5।।

महतत्त्व महनीयमहः, महाधाम गुणधाम
चिदानंद परमात्मा, वंदो रमताराम ।।6।।

तीन भुवन चूड़ा रतन, सम श्री जिन के पाय
नमत पाइये आप पद, सब विधि बंध नशाय ।।7।।

दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनम्
दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम्
दर्शनाद् दुरितध्वंसी, वंदनाद् वांछितप्रदः
पूजनात् पूरकः क्षीणां, जिनः साक्षात् सुरद्रुमः ।।8।।

प्रभुदर्शन सुख संपदा, प्रभुदर्शन नव निधि
प्रभुदर्शन से पाइये, सकल मनोरथ सिद्धि ।।9।।

ब्रह्मानंदं परम सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम्
एकं नित्यं विमलमचलं, सर्वदा साक्षीभूतम्
भावातीतं त्रिगुणरहितं, सद्गुरुं तं नमामि ||10||

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं, ज्ञानस्वरूपं निजबोधरूपम्
योगीन्द्रमीऽयं भवरोगवैद्यं, श्रीमद् गुरुं नित्यमहं नमामि ||11||

श्रीमद् परब्रह्मगुरुं वंदामि, श्रीमद् परब्रह्मगुरुं नमामि
श्रीमद् परब्रह्मगुरुं भजामि, श्रीमद् परब्रह्मगुरुं स्मरामि ||12||

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वर;
गुरुः साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः ||13||

ध्यानमूलं गुरुमूर्तिः, पूजामूलं गुरुपदम्;
मंत्रमूलं गुरुवाक्यं, मोक्षमूलं गुरुकृपा ||14||

अखंडमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्;
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरुवे नमः ||15||

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानांजनशलाकया;
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरुवे नमः ||16||

ध्यानधूपं मनः पुष्पं, पंचेन्द्रिय हुताशनम्;
क्षमा जाप संतोष पूजा, पूज्यो देवो निरंजनः ||17||

देवेषु देवोऽस्तु निरंजनो मे, गुरुर्गुरुष्वस्तु दमी शमी मे;
धर्मेषु धमोऽस्तु दयापरो मे, त्रीण्येव तत्त्वानि भवे भवे मे ||18||

परात्परगुरवे नमः परम्पराचार्य गुरवे नमः
परमगुरवे नमः साक्षात् प्रत्यक्ष सद्गुरवे नमो नमः ||19||

अहो! अहो! श्री सद्‌गुरु करुणासिंधु अपार
इस पामर पर प्रभु किया अहो! अहो! उपकार ।।20।।

क्या प्रभुचरण तुझे धरुँ, आत्मा से सब हीन
वो तो तुने ही दिया, वर्तूं चरणाधीन ।।21।।

यह देहादि आज से वर्ते, प्रभु आधीन
दास दास मैं दास हूँ, आप प्रभु का दीन ।।22।।

षट्स्थानक समझाकर के, भिन्न बताए आप
म्यान से तलवार तक, यह उपकार अमाप ।।23।।

जो स्वरूप समझे बिना, पाया दुःख अनंत
समझाया वह पद नमूँ, श्री सद्‌गुरु भगवंत ।।24।।

नमस्कार

जय, जय गुरुदेव! सहजात्मस्वरूप परम गुरु, शुद्ध चैतन्य स्वामी
अंतरयामी भगवान, इच्छामि खमासमणो वंदिउ जावणिज्जाए
निसिहिआए मत्थऐण वंदामि ।।

परम पुरुष प्रभु सद्गुरु, परमज्ञान सुखधाम
जिसने दिया है ज्ञान निज, उनको सदा प्रणाम ।।25।।

नमस्कार

जय, जय गुरुदेव! सहजात्मस्वरूप परम गुरु, शुद्ध चैतन्य स्वामी
अंतरयामी भगवान, इच्छामि खमासमणो वंदिउ जावणिज्जाए
निसिहिआए मत्थऐण वंदामि ।।

देह के संग जिनकी दशा, वर्ते देहातीत
इन ज्ञानी के चरणों में हो वंदन अगणित ।।26।।

नमस्कार

जय, जय गुरुदेव! सहजात्मस्वरूप परम गुरु, शुद्ध चैतन्य स्वामी अंतरयामी भगवान, इच्छामि खमासमणो वंदिउ जावणिज्जाए निसिहिआए मत्थऐण वंदामि ।।

नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु, शरणं शरणं शरणं, त्रिकाल शरणं, भवोभव शरणं, सद्‌गुरु शरणं, सदा सर्वदा त्रिविध त्रिविध भाववंदन हो, विनय वंदन हो, समयात्मक वंदन हो, ॐ नमोऽस्तु जय गुरुदेव शांति, परम तारक, परम सज्जन, परम हेतु, परम दयापूर्ण, परम प्रेमपूर्ण, परम कृपालु, वाणी सुरसाज, अति सुकुमाल, जीवदया प्रतिपाल, कर्मशत्रु के काल, 'मा हणो, मा हणो' शब्द करनेवाले, आपके चरणकमल में मेरा मस्तक आपके चरणकमल मेरे हृदयकमल में अखंडपने संस्थापित रहें, संस्थापित रहें। सत्पुरुषों का सत्स्वरूप मेरे चित्तस्मृति के पट पर टंकोत्कीर्णवत् सदा उदित जयवंत रहे, जयवंत रहे।

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजबोधरूपम्
योगीन्द्रमीऽयं भवरोगवैद्यं श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि ||27||

8

श्री आत्मसिद्धि शास्त्र

जो स्वरूप समझे बिना, पाया दुःख अनंत;
समझाया वह पद नमन, श्री सद्गुरु भगवंत ॥1॥

वर्तमान इस काल में, मोक्षमार्ग बहु लुप्त;
विचार करें आत्मार्थी जन, कहते धर्म अगुप्त ॥2॥

कोई क्रियाजड़ में रहे, शुष्कज्ञान में कोय;
माने मारग मोक्ष का, करुणा देख के होय ॥3॥

बाह्य क्रियाओं में रचे अन्तर्भेद न कोय;
ज्ञानमार्ग निषेधते, वो ही क्रिया जड़ होय ||4||

बंध मोक्ष है कल्पना, कहते वाणी में;
वर्ते मोहावेश में, शुष्क ज्ञानी हैं वे ||5||

वैराग्यादि सफल तब, जब संग आतमज्ञान;
और हो आत्मज्ञान की, प्राप्ति हेतु निदान ||6||

त्याग वैराग्य न चित्त में, होवे न आतमज्ञान;
अटके त्याग वैराग्य में, तो भूले निज भान ||7||

जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वो;
वहाँ-वहाँ वैसा आचरण, आत्मार्थी जन वो ||8||

सेवे सद्‌गुरु चरण को, त्याग दे निज पक्ष;
पाए वह परमार्थ को, निजपद का ले लक्ष ||9||

आत्मज्ञान, समदर्शिता, विचरे उदय प्रयोग;
अपूर्व वाणी, परमश्रुत, सद्‌गुरु लक्षण योग्य ||10||

प्रत्यक्ष सद्‌गुरु सम नहीं, परोक्ष जिन उपकार;.
ऐसा लक्ष्य हुए बिना, उगे न आत्म विचार ||11||

सद्‌गुरु के उपदेश बिना, समझ न आए जिनरूप;
समझे बिना उपकार क्या? क्यों समझे जिनस्वरूप? ||12||

आत्मादि अस्तित्व के, जो निरूपक शास्त्र;
प्रत्यक्ष सद्‌गुरु योग नहीं, वहाँ आधार सुपात्र ||13||

अथवा सद्गुरु ने कहा, जो अवगाहन काज;
वे सब नित्य विचार करे, कर के मतान्तर त्याग ||14||

रोके जीव स्वछंद तो, पावे अवश्य मोक्ष;
पाया ऐसे अनंत ने, कहते जिन निर्दोष ||15||

प्रत्यक्ष सद्गुरु योग से, स्वछंद रुकता जाए;
अन्य उपाय करते हुए, प्रायः दुगुना होय ||16||

स्वछंद, मत, आग्रह त्यजे, वर्ते सद्गुरु लक्ष्य;
समकित उसको कह गए, कारण बने प्रत्यक्ष ||17||

मानादिक शत्रु महा, निज मत से नहीं जाए;
जाते सद्गुरु शरण में, अल्प प्रयास से जाए ||18||

जो सद्‌गुरु उपदेश से, पाया केवल ज्ञान;
गुरु रहे छद्‌मस्थ पर, विनय करे भगवान ||19||

ऐसा मार्ग विनय का, कहते श्री वीतराग;
मूल हेतु इस मार्ग का, समझे कोई सौभाग्य ||20||

असद्‌गुरु उस विनय का, लाभ जो लेते कोई;
महामोहनीय कर्म से, डूबे भव जल में ही ||21||

होय मुमुक्षु जीव तो, समझे ऐसा विचार;
होय मतार्थी जीव तो, करे उलट निर्धार ||22||

होय मतार्थी जीव तो, होवे न आतमलक्ष्य;
वही मतार्थी लक्षण, यहाँ कहे निर्पक्ष ||23||

मतार्थी - लक्षण

बाह्य त्याग पर ज्ञान नहीं, वे माने गुरु सत्य;
अथवा निज कुल धर्म के ही, गुरु में करें ममत्व ||24||

जो जिन देह प्रमाण और, समवसरण आदि सिद्धि;
वर्णन समझे जिन का, रोक रखी निज बुद्धि ||25||

प्रत्यक्ष सद्गुरु योग में, वर्ते दृष्टि विमुख;
असद्गुरु को दृढ़ करे, निज मानार्थे मुख्य ||26||

देवादि गति भेद में, जो समझे श्रुतज्ञान;
माने निज मत वेष का, आग्रह मुक्ति निदान ||27||

समझे स्वरूप न वृत्ति का, करे व्रत अभिमान;
ग्रहे नहीं परमार्थ को, लेने लौकिक मान ||28||

अथवा निश्चय नय ग्रहे, मात्र शब्द में खोए;
लोपे सद्व्यवहार को, साधन रहित होय ।।29।।

ज्ञान दशा पाए नहीं, साधन दशा न कोई;
पावे उनका संग जो, वो डूबे भव में ही ।।30।।

वह भी जीव मतार्थ में, निज मानादि में जाए;
पाए नहीं परमार्थ को, अन्-अधिकारी कहाए ।।31।।

नहीं कषाय उपशांतता, नहीं अंतर वैराग्य;
सरलपना न मध्यस्थता, वह मतार्थी दुर्भाग्य ।।32।।

लक्षण कहे मतार्थी के, मतार्थ दूर हो, काज;
अब कहूँ आत्मार्थी के, आत्म-अर्थ सुखसाज ।।33।।

आत्मार्थी - लक्षण

आत्मज्ञान वहाँ मुनिपना, वही सच्चे गुरु होय;
बाकी कुलगुरु कल्पना में, आत्मार्थी नहीं खोय ।।34।।

प्रत्यक्ष सद्गुरु प्राप्ति का, माने परम उपकार;
तीन योग एकत्व से, वर्ते आज्ञाधार ।।35।।

एक होय तीन काल में, परमार्थ का पंथ;
प्रेरे उस परमार्थ को, वह व्यवहार समंत ।।36।।

ऐसे विचारे अंतर से, शोधे सद्गुरु योग;
काम एक आत्मार्थ का, दूजा नहीं मनरोग ।।37।।

कषाय की उपशांतता, मात्र मोक्ष अभिलाष;
भव-खेद, प्राणीदया, वहाँ आत्मार्थ निवास ।।38।।

दशा न ऐसी जब तक हो, जीव बने नहीं योग्य;
मोक्षमार्ग पावे नहीं, मिटे न अंतर रोग ||39||

आवे जहाँ ऐसी दशा, सद्गुरु बोध सुहाय;
बोध से हो सुविचारणा, वहाँ प्रगटे सुखदाय ||40||

जहाँ प्रगटे सुविचारणा, वहाँ प्रगटे निजज्ञान;
उस ज्ञान से क्षय मोह का हो, पाए पद निर्वाण ||41||

उपजे वह सुविचारणा, मोक्षमार्ग समझ आए;
गुरु-शिष्य संवाद से, षट्पद यहाँ कहाए ||42||

षट्पद नाम कथन

'आत्मा है', 'वह नित्य है' 'है कर्त्ता निजकर्म';
'है भोक्ता' और 'मोक्ष है', 'मोक्ष उपाय सुधर्म' ||43||

षट्स्थानक संक्षेप में, षट्दर्शन भी वे;
समझाने परमार्थ को, कहे ज्ञानी ने ये ||44||

प्रथम पद - आत्मा है।
शंका - शिष्य उवाच

नहीं दृष्टि में आता है, नहीं जानूँ कुछ रूप;
दूजा भी अनुभव नहीं, तभी न जीव स्वरूप ||45||

अथवा देह ही आत्मा, अथवा इन्द्रिय, प्राण;
मिथ्या भिन्न है मानना, नहीं अलग है प्रमाण ||46||

यदि जो आत्मा होय तो, जानूँ मैं नहीं क्यो?
जानूँ जो वो होय तो, घट-पट आदि ज्यों ||47||

तो फिर नहीं है आत्मा, मिथ्या मोक्ष उपाय;
यह अंतर शंका रही, समझाओ सदुपाय ||48||

समाधान - श्री सद्गुरु उवाच

भासे देहाध्यास से, आत्मा देह समान;
पर वो दोनों भिन्न हैं, लक्षण प्रगट प्रमाण ।।49।।

भासे देहाध्यास से, आत्मा देह समान;
पर वो दोनों भिन्न हैं, जैसे असि और म्यान ।।50।।

जो द्रष्टा है दृष्टि का, जो जाने है रूप;
अबाध्य अनुभव जो रहे, वो है जीव स्वरूप ।।51।।

है इन्द्रिय प्रत्येक को, निज निज विषय का ज्ञान;
पाँच इन्द्रिय के विषय का, पर आत्मा को भान ।।52।।

देह न जाने आत्मा को, जाने न इन्द्रिय, प्राण;
आत्मा की सत्ता से ही, सब वे प्रवर्ते जान ।।53।।

सर्व अवस्था के विषय, न्यारा सदा रहे जान;
प्रगट रूप चैतन्यमय, है यह सदा प्रमाण ||54||

घट-पट आदि जाने तू, तभी तो लेता मान;
जाननहार को माने नहीं, कहिए कैसा ज्ञान? ||55||

परम बुद्धि कृश देह में, स्थूल देह मति अल्प;
देह होय जो आत्मा, बने न यह विकल्प ||56||

जड़ चेतन का भिन्न है, केवल प्रगट स्वभाव;
एकपना पावे नहीं, तीन काल द्वय-भाव ||57||

आत्मा की शंका करे, आत्मा खुद ही आप;
शंका को करता स्वयं, अचरज यह अमाप ||58||

द्वितीय पद - आत्मा नित्य है।
शंका - शिष्य उवाच

आत्मा के अस्तित्व का, आपने कहा प्रकार;
संभव इसका होता है, अंतर किया विचार ।।59।।

दूसरी शंका होती यहाँ, आत्मा नहीं अविनाश;
देहयोग से उपजे, देह वियोग से नाश ।।60।।

अथवा वस्तु क्षणिक है, क्षण-क्षण पलटे जाए;
इस अनुभव से भी नहीं, आत्मा नित्य जान पाए ।।61।।

समाधान - श्री सद्गुरु उवाच

देह मात्र संयोग है, और जड़, रुपी, दृश्य;
चेतन की उत्पत्ति लय, किसके अनुभव वश? ।।62।।

जिसके अनुभव वश है, उत्पन्न लय का ज्ञान;
वह उससे भिन्न हुए बिना, होवे न कभी भी भान ।।63।।

जो संयोगों देखिए, वे सब अनुभव दृश्य;
उपजे नहीं संयोग से, आत्मा नित्य प्रत्यक्ष ।।64।।

जड़ से चेतन उपजे, चेतन से जड़ होय;
ऐसा अनुभव किसी को, कहीं कभी न होय ।।65।।

कोई संयोगों से नहीं, जिसकी उत्पत्ति होय;
नाश न उसका किसी में भी, तभी तो नित्य सदाय ।।66।।

क्रोधादि तरतम्यता, सर्पादि में होय;
पूर्वजन्म संस्कार ये, जीव नित्यता होय ।।67।।

आत्मा द्रव्य नित्य है, पर्याय पलटाय;
बालादि वय तीन का, ज्ञान एक को होय ।।68।।

अथवा ज्ञान क्षणिक का, जाने जाननहार;
जाननहार क्षणिक नहीं, कर अनुभव निर्धार ।।69।।

कभी किसी भी वस्तु का, होय न पूरा नाश;
चेतन पाए नाश तो, किसमें मिले, तलाश ।।70।।

तृतीय पद - आत्मा कर्म का कर्त्ता है।
शंका - शिष्य उवाच

कर्त्ता जीव न कर्म का, कर्म ही कर्त्ता कर्म;
अथवा सहज स्वभाव या, कर्म जीव का धर्म ।।71।।

आत्मा सदा असंग और करे प्रकृति बंध;
अथवा ईश्वर प्रेरणा, उससे जीव अबंध ।।72।।

तो फिर मोक्ष उपाय का, समझ न हेतु आए;
कर्म और कर्त्तापना, तो नहीं, तो नहीं जाए ||73||

समाधान - श्री सद्‌गुरु उवाच

होय न चेतन प्रेरणा, कौन ग्रहे तो कर्म?
जड़ स्वभाव नहीं प्रेरणा, देख विचार ये धर्म ||74||

जो चेतन करता नहीं, नहीं होते तो कर्म;
तो फिर सहज स्वभाव नहीं, और नहीं जीवधर्म ||75||

केवल होय असंग जो, भासत तुझे न क्यों?
असंग है परमार्थ से, पर निजभान से त्यों ||76||

कर्त्ता ईश्वर कोई नहीं, ईश्वर शुद्ध स्वभाव;
अथवा प्रेरक उन्हें कहें, ईश्वर दोष-प्रभाव ||77||

चेतन जो निज भान में, कर्त्ता आप स्वभाव;
वर्ते नहीं निज भान में, कर्त्ता कर्म प्रभाव ||78||

चतुर्थ पद - आत्मा कर्म का भोक्ता है।
शंका - शिष्य उवाच

जीव कर्म कर्त्ता कहो, पर भोक्ता नहीं वो;
क्या समझे जड़ कर्म ये, फल परिणाम क्या हो? ||79||

फलदाता ईश्वर कहें, तो भोक्ता सिद्ध होय;
ऐसा कहें ईश्वरपना, ईश्वरपना ही खोय ||80||

ईश्वर सिद्ध हुए बिना, जगत नियम नहीं होय;
फिर शुभाशुभ कर्म का, भोग्य स्थान नहीं कोई ||81||

समाधान- श्री सद्गुरु उवाच

भावकर्म निज कल्पना, इसलिए चेतन रूप;
जीव वीर्य की स्फुरणा, ग्रहण करे जड़ धूप ।।82।।

ज़हर सुधा समझे नहीं, जीव खाए फल पाए;
ऐसे शुभाशुभ कर्म का, भोक्तापना समझाए ।।83।।

एक रंक और एक नृप, ये आदि जो भेद;
कारण बिना न कार्य ये, ये ही शुभाशुभ वेद्य ।।84।।

फलदाता ईश्वर की, इसमें न जरुरत हो;
कर्म स्वभाव से परिणमें, भोग से दूर हो ।।85।।

ये सब भोग्य विशेष के, स्थानक द्रव्य स्वभाव;
गहन बात है शिष्य यह, कहा संक्षेप में सार ।।86।।

पंचम पद - मोक्ष है।
शंका - शिष्य उवाच

कर्त्ता भोक्ता जीव हो, पर उसका नहीं मोक्ष;
बीता काल अनंत पर, वर्तमान में दोष ।।87।।

शुभ करे फल भोगता, देवादि गति जाय;
अशुभ करे नरकादि फल, कर्मरहित न पाय ।।88।।

समाधान - श्री सद्गुरु उवाच

जैसे शुभाशुभ कर्मपद, जाने सफल प्रमाण;
वैसे निवृत्ति सफ़लता, तभी तो मोक्ष सुजान ।।89।।

बीता काल अनंत जो, कर्म शुभाशुभ भाव;
वही शुभाशुभ छेदते, उपजे मोक्ष स्वभाव ।।90।।

देहादिक संयोग का, आत्यन्तिक वियोग;
सिद्ध मोक्ष शाश्वत पद में, निज अनंत सुख भोग ||91||

षष्टम पद - मोक्ष का उपाय है।
शंका - शिष्य उवाच

होय कदापि मोक्षपद, नहीं अविरोध उपाय;
कर्म काल अनंत के, कैसे छेदें जाएँ? ||92||

अथवा मत दर्शन बहुत, कहें उपाय अनेक;
मत सच्चा है कौन सा, बने न यही विवेक ||93||

किस जाति में मोक्ष है, कौन से वेष में मोक्ष;
इसका निश्चय न बने, अनेक भेद हैं दोष ||94||

इससे ऐसा जान पड़े, मिले न मोक्ष उपाय;
जीवादि को जानकर, क्या उपकार ही पाय? ||95||

पाँचों उत्तर से हुआ, समाधान सर्वांग;
समझूँ मोक्ष उपाय तो, उदय उदय सद्भाग्य ।।96।।

समाधान - श्री सद्गुरु उवाच

पाँचों उत्तर से हुई, आत्मा विषय प्रतीत;
होगी मोक्ष उपाय की, सहज प्रतीत ये रीत ।।97।।

कर्मभाव अज्ञान है, मोक्षभाव निजवास;
अंधकार अज्ञान सम, नाशे ज्ञान प्रकाश ।।98।।

जो जो कारण बंध के, वही बंध के पंथ;
वो कारण छेदक दशा, मोक्ष पंथ भव अंत ।।99।।

राग-द्वेष अज्ञान ये, मुख्य कर्म की गाँठ;
होय निवृत्ति जिससे, वही मोक्ष का मार्ग ।।100।।

आत्मा सत् चैतन्यमय, सर्वाभास रहित;
जिससे केवल पाइये, मोक्ष पंथ की रीत ।।101।।

कर्म अनंत प्रकार के, उनमें मुख्य आठ;
इनमें मुख्य मोहनीय, नाश करे कहूँ पाठ ।।102।।

कर्म मोहनीय भेद दो, दर्शन चारित्र नाम;
हरे बोध वीतरागता, अचूक उपाय मान ।।103।।

कर्मबंध क्रोधादि को, हरे क्षमादि से;
प्रत्यक्ष अनुभव सब करें, इसमें क्या संदेह? ।।104।।

छोड़ के मत दर्शन का, आग्रह और विकल्प;
कहा मार्ग जो साध ले, जन्म हों उसके अल्प ।।105।।

षट्पद के षट्प्रश्न जो, पूछे कर के विचार;
इन पद की सर्वांगता, मोक्ष मार्ग निर्धार ।।106।।

जाति, वेष का भेद नहीं, कहा मार्ग जो होय;
साधे जो मुक्ति मिले, इसमें भेद न कोय ।।107।।

कषाय की उपशांतता, मात्र मोक्ष अभिलाष;
भव खेद अंतर दया, वह कहिए जिज्ञास ।।108।।

उस जिज्ञासु जीव को, मिले जो सद्गुरु बोध;
तो पाए समकित को, वर्ते अंतर शोध ।।109।।

मत दर्शन आग्रह त्यजे, वर्ते सद्गुरु लक्ष;
पाए शुद्ध समकित वो, जिसमें भेद न पक्ष ।।110।।

वर्ते निजस्वभाव का, अनुभव लक्ष प्रतीति;
वृत्ति बहे निजभाव में, परमार्थ समकित ।।111।।

वर्धमान समकित हो, टाले मिथ्याभास;
उदय होय चारित्र का, वीतराग पदवास ।।112।।

केवल निज स्वभाव का, अखंड वर्ते ज्ञान;
कहिए केवलज्ञान उसे, देह संग निर्वाण ।।113।।

कोटि वर्ष का स्वप्न भी, जागृत हो भ्रम जाए;
ऐसे विभाव अनादि का, ज्ञान होय दूर जाए ।।114।।

छूटे देहाध्यास तो, नहीं कर्त्ता तू कर्म;
नहीं भोक्ता तू उनका, यही धर्म का मर्म ।।115।।

इसी धर्म से मोक्ष है, तू है मोक्ष स्वरूप;
अनंत दर्शन ज्ञान तू, अव्याबाध स्वरूप ||116||

शुद्ध, बुद्ध चैतन्यघन, स्वयं ज्योति सुखधाम;
दूजा कहे अब और क्या? कर विचार तो पाय ||117||

निश्चय सर्व ज्ञानी का, यहाँ पे आकर समाय;
धरा मौन ये बोलकर, सहज समाधि में जाय ||118||

शिष्य - बोधबीज प्राप्ति कथन

सद्‌गुरु के उपदेश से, आया अपूर्व भान;
निज पद निज में पा लिया, दूर हुआ अज्ञान ||119||

अनुभव निज स्वरूप का, शुद्ध चेतना रूप;
अजर अमर अविनाशी और, देहातीत स्वरूप ||120||

कर्त्ता भोक्ता कर्म का, विभाव वर्ते जहाँ;
वृत्ति बहे निजभाव में, हुआ अकर्त्ता वहाँ ।।121।।

अथवा निज परिणाम जो, शुद्ध चेतनारूप;
कर्त्ता भोक्ता उसका रहे, निर्विकल्प स्वरूप ।।122।।

मोक्ष कहा निजशुद्धता, पावे वही है पंथ;
समझाया संक्षेप में, सकल मार्ग निर्ग्रंथ ।।123।।

अहो! अहो! श्री सद्गुरु, करुणासिंधु अपार;
इस पामर पर प्रभु किया, अहो! अहो! उपकार ।।124।।

क्या प्रभु चरणों में धरूँ, आत्मा से सब हीन;
वह तो प्रभु ने ही दिया, वर्तूं चरणाधीन ।।125।।

यह देहादि आज से, वर्ते प्रभु आधीन;
दास, दास मैं दास हूँ, आप प्रभु का दीन ।।126।।

षट्स्थानक समझाकर के, भिन्न बताए आप;
म्यान से तलवार तक, यह उपकार अमाप ।।127।।

उपसंहार

दर्शन षट् समाए हैं, इन षट् स्थानक में ही;
विचार कर विस्तार से, संशय रहे न कोई ।।128।।

आत्मभ्रांति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान;
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान ।।129।।

जो इच्छो परमार्थ तो, करो सत्य पुरुषार्थ;
भवस्थिति आदि नाम ले, छेदो नहीं आत्मार्थ ।।130।।

निश्चय वाणी सुनकर, साधन न त्यागो;
निश्चय रखकर लक्ष्य में, साधन करते जाओ ||131||

नय निश्चय एकांत से, यहाँ नहीं हैं कहे;
एकांत से व्यवहार नहीं, दोनों साथ रहें ||132||

गच्छ मत की जो कल्पना, वह नहीं सद्व्यवहार;
भान नहीं निज रूप का, वह निश्चय नहीं सार ||133||

पूर्व में ज्ञानी जो हुए, वर्तमान में होय;
होंगे काल भविष्य में, मार्ग भेद नहीं कोय ||134||

सर्व जीव हैं सिद्ध सम, जो समझे वो होय;
सद्गुरु आज्ञा, जिनदशा, निमित्त कारण होय ||135||

उपादान का नाम ले, वो जो त्यागे निमित्त;
पाए नहीं सिद्धत्व को, रहे भ्रान्ति में स्थित ||136||

मुख से ज्ञान कथन करे, अंतर छूटा न मोह;
वो पामर प्राणी करे, मात्र ज्ञानी का द्रोह ||137||

दया, शांति, समता, क्षमा, सत्य, त्याग, वैराग्य;
होय मुमुक्षुता घट में, वो ही सदा सुजाग्य ||138||

मोह भाव क्षय हो जहाँ, अथवा होय प्रशांत;
वह कहिए ज्ञानी दशा, बाकी कहिए भ्रांत ||139||

सकल जगत है जूठनवत्, अथवा स्वप्न समान;
वह कहिए ज्ञानी दशा, बाकी वाचा ज्ञान ||140||

स्थानक पाँच विचार कर, छठे में वर्ते जो;
पाए स्थानक पाँचवा, संदेह न इसमें हो ।।141।।

देह के संग जिनकी दशा, वर्ते देहातीत;
उन ज्ञानी के चरणों में, हो वंदन अगणित ।।142।।

9

अपूर्व अवसर काव्य

अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आएगा?
कब होवेंगे बाह्यांतर निर्ग्रन्थ हम?
सर्व संबंध का बंधन तीक्ष्ण छेद कर,
विचरेंगे कब महत्त-पुरुष के पंथ पर।
अपूर्व अवसर... ||1||

सर्व भाव से उदासीन वृत्ति को कर,
मात्र देह ये संयम हेतु होय जब;
अन्य कारण से अन्य कुछ चाहूँ नहीं,
देह में भी किंचित् मूर्छा नहीं होय जब।
अपूर्व अवसर... ||2||

दर्शन मोह के क्षय से उपजा बोध जो,
देह भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान अब;
उससे प्रक्षीण चारित्र मोह भी जाता देख,
वर्ते ऐसा निज स्वरूप का ध्यान जब।
अपूर्व अवसर... ।।3।।

आत्मस्थिरता तीन संक्षिप्त योग की,
मुख्य रूप से वर्ते देह पर्यन्त तक;
घोर परिषह या उपसर्ग के भय से,
आए नहीं कभी उस स्थिरता का अंत जब।
अपूर्व अवसर... ।।4।।

संयम के हेतु से ही योग प्रवृत्ति हो,
स्वरूप लक्ष से जिन-आज्ञा आधीन जब;
वह भी क्षण-क्षण घटती जाती स्थिति में,
अंत में होवुं निज स्वरूप में लीन जब।
अपूर्व अवसर... ।।5।।

पंच विषय में राग द्वेष कुछ हो नहीं,
पंच प्रमाद में नहीं हो मन को क्षोभ जब;
द्रव्य, क्षेत्र और काल, भाव प्रतिबंध बिन,
विचरेंगे उदयाधीन पर वीतलोभ जब।
अपूर्व अवसर... ||6||

क्रोध के प्रति वर्ते क्रोध स्वभाव से,
मान उठे तो दीनभाव का मान जब;
माया के प्रति माया साक्षी भाव की,
लोभ उठे तो नहीं लोभ समान जब।
अपूर्व अवसर... ||7||

बहु उपसर्ग कर्त्ता के प्रति भी क्रोध न हो;
वंदे चक्री तथापि न होवे मान जब;
देह जाए पर माया होवे न रोम में,
लोभ नहीं हो प्रबल सिद्धि निदान जब।
अपूर्व अवसर... ||8||

नग्नभाव, मुंडभाव सहित अस्नानता,
अदंतधोवन आदि परम प्रसिद्ध जब;
केश, रोम, नख या अंग में श्रृँगार नहीं,
द्रव्यभाव संयममय निर्ग्रन्थ सिद्ध जब।
अपूर्व अवसर... ॥9॥

शत्रु मित्र के प्रति वर्ते समदर्शिता,
मान-अमान में वर्ते वही स्वभाव जब;
जन्म-मरण में हो नहीं न्यूनाधिकता,
भव मोक्ष में भी शुद्ध वर्ते समभाव जब।
अपूर्व अवसर... ॥10॥

एकाकी विचरेंगे जब श्मशान में,
और पर्वत में बाघ, सिंह संयोग जब;
अडोल आसन और मन में नहीं क्षोभ हो,
परम मित्र का जैसे पाया योग तब।
अपूर्व अवसर... ॥11॥

घोर तपस्या में भी मन को ताप नहीं,
सरस अन्न में न मन में प्रसन्न भाव जब;
रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की,
सब को माना पुद्‌गल एक स्वभाव जब।
अपूर्व अवसर... ||12||

ऐसे पराजय कर के चारित्र मोह का,
आऊँ वहाँ जहाँ करण अपूर्व भाव हो;
श्रेणी क्षपक की हो कर के आरूढ़ जब,
अनन्य चिंतन अतिशय शुद्ध स्वभाव जब।
अपूर्व अवसर... ||13||

मोह स्वयंभूरमण समुद्र को तैर कर,
स्थिति हो जहाँ क्षीण मोह गुणस्थान की जब;
अंत समय वहाँ पूर्ण स्वरूप वीतराग हो,
प्रगटाऊँ निज केवलज्ञान निधान जब।
अपूर्व अवसर... ||14||

चार कर्म घनघाती हो व्यवच्छेद जहाँ,
भव के बीज का हो आत्यंतिक नाश जब;
सर्व भाव ज्ञाता द्रष्टा सह शुद्धता,
कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनंत प्रकाश जब।
अपूर्व अवसर... ।।15।।

वेदनीयादि चार कर्म वर्ते जहाँ,
जली सींदरीवत् आकृति मात्र हो;
उस देहायुष आधीन जिनकी स्थिति है,
आयुष्य पूर्ण हो, मिटता दैहिक पात्र जब।
अपूर्व अवसर... ।।16।।

मन, वचन, काया और कर्म की वर्गणा,
छूटे जहाँ सकल पुद्गल संबंध जब;
ऐसा अयोगी गुणस्थानक जहाँ वर्तता,
महाभाग्य सुखदायक पूर्ण अबंध तब।
अपूर्व अवसर... ।।17।।

एक परमाणु मात्र की मिले न स्पर्शता,
पूर्ण कलंक रहित अडोल स्वरूप जब;
शुद्ध निरंजन चैतन्यमूर्ति अनन्यमय,
अगुरुलघु, अमूर्त सहजपद रूप तब।
अपूर्व अवसर... ||18||

पूर्व प्रयोगादि कारण के योग से,
उर्ध्वगमन सिद्धालय प्राप्त सुस्थित जब;
सादि अनंत अनंत समाधि सुख में,
अनंत दर्शन, ज्ञान अनंत सहित तब।
अपूर्व अवसर... ||19||

जो पद श्री सर्वज्ञ ने जाना ज्ञान में,
कह न सके उसको भी खुद भगवान जब;
उस स्वरूप को अन्य वाणी तो क्या कहे,
अनुभव गोचर मात्र रहा वह ज्ञान अब।
अपूर्व अवसर... ||20||

उसी परमपद प्राप्ति का किया ध्यान मैंने,
शक्ति नहीं और हाल मनोरथ जानूँ जब;
तो भी निश्चय राजचंद्र मन में रहा,
प्रभु आज्ञा से होऊँ वही स्वरूप अब।
अपूर्व अवसर... ।।21।।

10

जड़ चेतन विवेक

जड़ भावे जड़ परिणमे, चेतन चेतन भाव ।
कोई कोई पलटे नहीं, छोडी आप स्वभाव ।।1।।

जड़ तो जड़ तीन काल में, चेतन चेतन होय।
प्रकट अनुभवरूप है, संशय उसमें क्यूँ? ।।2।।

जो जड़ है तीन काल में, चेतन चेतन होय।
बन्ध मोक्ष फिर नहीं घटे, निवृत्ति प्रवृत्ति न होय ।।3।।

बन्ध मोक्ष संगोय से, जब तक आत्म अभान।
पर नहीं त्याग स्वभाव का, कह गए जिन भगवान ।।4।।

वर्ते बंध प्रसंग में, वह निज पद अज्ञान।
पर जड़ता नहीं आत्म को, यह सिद्धांत प्रमाण ।।5।।

ग्रहे अरूपी रूपी को, यह अचरज की बात।
जीव बंधन जाने नहीं, कैसा जिन सिद्धांत ।।6।।

प्रथम देह दृष्टि रही, उससे दिखता देह।
अब दृष्टि हुई आत्म में, गया देह से स्नेह ।।7।।

जड़ चेतन संयोग ये, खान अनादि अनंत।
कोई न कर्त्ता उनका है, कह गए जिन भगवंत ।।8।।

मूल द्रव्य उत्पन्न नहीं, नहीं नाश भी हो।
अनुभव से वह सिद्ध है, कह गए जिनवर वो ।।9।।

होय द्रव्य का नाश नहीं, नहीं होत सो न होत।
एक समय वह सब समय, भेद अवस्था देख ||10||

परम पुरुष प्रभु सद्गुरु, परम ज्ञान सुखधाम।
जिसने दिया है भान निज, उनको सदा प्रणाम ||11||

11

अन्तिम उपदेश

इच्छत है जो जोगीजन, अनंत सुखस्वरूप।
मूल शुद्ध वह आत्मपद, सयोगी जिनस्वरूप ।।1।।

आत्म स्वभाव अगम्य वह, अवलम्बन आधार।
जिनपद से दर्शाया है, वह स्वरूप प्रकार ।।2।।

जिनपद निजपद एकता, भेदभाव नहीं कोई।
लक्ष्य होवे उनका हमें, कहे शास्त्र सुखदाई ।।3।।

जिन प्रवचन दुर्गम्य है, थकते अति मतिमान।
अवलम्बन श्री सद्‌गुरू, सुगम और सुखखान ।।4।।

उपासना जिन चरण की, अतिशय भक्ति सहित।
मुनिजन संगति रति अति, संयम योग घटित ।।5।।

गुण प्रमोद अतिशय रहे, रहे अन्तर्मुख योग।
प्राप्ति श्री सद्‌गुरु कृपा से, जिन दर्शन अनुयोग ।।6।।

प्रवचन समुद्र बिंदु में, उलट आता है ज्यों।
पूर्व चौदह की लब्धि का, उदाहरण भी त्यों ।।7।।

विषय विकार सहित जो, रहे मति का योग।
परिणाम की विषमता, उसको योग अयोग ।।8।।

मंद विषय और सरलता, सह आज्ञा सुविचार।
करुणा कोमलतादि गुण, प्रथम भूमिका धार ।।9।।

रोके शब्दादिक विषय, संयम साधन राग।
जगत इष्ट नहीं आत्मा से, मध्य पात्र महाभाग्य ||10||

नहीं तृष्णा जीने की हो, मरणयोग नहीं क्षोभ।
महापात्र इस मार्ग के, परम योग जीतलोभ ||11||

(2)

आवत बहु समदेश में, छाया जाय समाय।
आवत ऐसे स्वभाव में, मन स्वरूप भी जाय ||1||

उपजे मोह विकल्प से, समस्त यह संसार ।
अन्तर्मुख अवलोकन से, विलय होते नहीं देर ||2||

(3)

सुखधाम अनंत सुसंत चही, दिन रात रहे तद्ध्यान में ही ।
परशांति अनंत सुधामय जो, प्रणमूँ पद को, पाऊँ, जय हो ।।

12

श्री सद्गुरु-कृपा-महात्म्य

बिना नयन पावे नहीं, बिना नयन की बात।
सेवे सद्गुरु के चरण, सो पावे साक्षात् ।।1।।

बूझी चहत जो प्यास को, है बूझन की रीत।
पावे नहीं गुरुगम बिना, ये ही अनादि स्थित ।।2।।

ये ही नहीं है कल्पना, ये ही नहीं विभंग।
कई नर पंचम काल में, देखी वस्तु अभंग ।।3।।

नहीं दे तू उपदेश को, प्रथम ले तू उपदेश।
सबसे न्यारा अगम है, वो ज्ञानी का देश ||4||

जप, तप और व्रतादि सब, तब तक है भ्रमरूप।
जब तक है नहीं संत की, पाई कृपा अनूप ||5||

पाया की यह बात है, निज छन्दन को छोड़।
पीछे लाग सत्पुरुष के, तो सब बंधन तोड़ ||6||

13

प्रणिपात स्तुति

अहो! अहो! श्री सद्‌गुरु, करुणा सिंधु अपार,
इस पामर पर प्रभु किया, अहो! अहो! उपकार ।।1।।

क्या प्रभु चरण तुझे धरूँ, आत्मा से सब हीन,
वह तो प्रभु ने ही दिया, वर्तूं चरणाधीन ।।2।।

यह देहादि आज से वर्ते प्रभु आधीन,
दास, दास, मैं दास हूँ, आप प्रभु का दीन ।।3।।

षट्स्थानक समझा कर के, भिन्न दिखाए आप,
म्यान से तलवार तक, यह उपकार अमाप ।।4।।

जो स्वरूप समझे बिना, पाया दुःख अनंत,
समझाया वह पद नमूँ, श्री सद्गुरु भगवंत ।।5।।

परम पुरुष प्रभु सद्गुरु, परम ज्ञान सुखधाम,
जिसने दिया है भान निज, उनको सदा प्रणाम ।।6।।

देह के संग जिनकी दशा, वर्ते देहातीत,
इन ज्ञानी के चरणों में, हो वंदन अगणित ।।7।।

14

मारग साचा मिल गया

मारग साचा मिल गया, छूट गए संदेह।
होता सो तो जल गया, भिन्न किया निज देह ||1||

समझ पीछे सब सरल है, बिना समझ मुशकील।
यह मुशकीली क्या कहूँ?... ||2||

खोज पिण्ड ब्रह्मांड का, पत्ता तो लग जाय।
ये ही ब्रह्मांडि वासना, जब जावे तब... ||3||

आप आप को भूल गया, इनसे क्या अँधेर?।
समर-समर अब हसत हैं, नहीं भूलेंगे फेर ।।4।।

जहाँ कल्पना-जलपना, तहाँ मानु दुख छांई।
मिटे कल्पना-जलपना, तब वस्तु तिन पाई ।।5।।

हे जीव! क्या इच्छत है अब? है इच्छा दुःख मूल।
जब इच्छा का नाश तब, मिटे अनादि भूल ।।6।।

ऐसी कहाँ से मति भई, आप आप है नांहि।
आपन को जब भूल गए, अवर कहाँ से लाई ।।7।।

आप आप यह शोध से, आप आप मिल जाए।
आप मिलन नय बाप को; ... ।।8।।

15

वीतराग का कहा धर्म

वचनामृत - 505

वीतराग का कहा हुआ परम शांत रसमय धर्म पूर्ण सत्य है, ऐसा निश्चय रखना। जीव को अनअधिकारिता के कारण तथा सत्पुरुष के योग के बिना समझ में नहीं आता; तो भी जीव के संसार रोग को मिटाने के लिये उस जैसा दूसरा कोई पूर्ण हितकारी औषध नहीं है, ऐसा बारम्बार चिंतन करना।

यह परम तत्त्व है, इसका मुझे सदैव निश्चय रहो; यह यथार्थ स्वरूप मेरे हृदय में प्रकाश करो, और जन्म-मरणादि बंधन से अत्यन्त निवृत्ति होओ! निवृत्ति होओ!

हे जीव! इस क्लेश रूप संसार से विराम ले, विराम ले; कुछ विचार कर, प्रमाद छोड़कर जागृत हो! जागृत हो!! नहीं तो रत्नचिंतामणि जैसा यह मनुष्य देह निष्फल जाएगा।

हे जीव! अब तुझे सत्पुरुष की आज्ञा निश्चय से उपासने योग्य है।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः!

16

सम्यक् दर्शन - स्वस्वरूप में रुचि

हाथ नोंध -2

हे सर्वोत्कृष्ट सुख के हेतुभूत सम्यक् दर्शन! तुझे अत्यन्त भक्ति से नमस्कार हो!

इस अनादि अनन्त संसार में अनंत अनंत जीव तेरे आश्रय के बिना अनंत अनंत दुःख का अनुभव करते हैं।

तेरे परम अनुग्रह से स्वस्वरूप में रुचि हुई, परम वीतराग स्वभाव के प्रति परम निश्चय हुआ, कृतकृत्य होने का मार्ग ग्रहण हुआ।

हे जिन वीतराग! आपको अत्यन्त भक्ति से नमस्कार करता हूँ।
आपने इस पामर पर अनंत अनंत उपकार किया है।

हे कुंदकुंद आदि आचार्यों! आपके वचन भी स्वरूप अनुसंधान
के लिए इस पामर को परम उपकारभूत हुए हैं। इसके लिए मैं आपको
अतिशय भक्ति से नमस्कार करता हूँ।

हे श्री सोभाग! तेरे सत्समागम के अनुग्रह से आत्मदशा का स्मरण
हुआ, उसके लिए तुम्हें नमस्कार करता हूँ।

17

क्षमापना पाठ

शिक्षापाठ - 56

हे भगवन्! मैं बहुत भूल गया, मैंने आपके अमूल्य वचनों को लक्ष्य (ध्यान) में नहीं लिया। आपके कहे हुए अनुपम तत्त्वों का मैंने विचार नहीं किया। आपके प्रणीत किये हुए उत्तम शील का सेवन किया नहीं। आपकी कही हुई दया, शांति, क्षमा और पवित्रता को मैंने पहचाना नहीं।

हे भगवन्! मैं भूला, भटका, घूमा-फिरा और अनंत संसार की विडम्बना में पड़ा हूँ। मैं पापी हूँ। मैं बहुत मदोन्मत्त और कर्मरज से मलिन हूँ।

हे परमात्मन्! आपके कहे हुए तत्त्वों के बिना मेरा मोक्ष नहीं। मैं निरन्तर प्रपंच में पड़ा हूँ। अज्ञान से अंध हुआ हूँ, मुझमें विवेकशक्ति नहीं है और मैं मूढ़ हूँ, मैं निराश्रित हूँ, अनाथ हूँ।

नीरागी परमात्मन्! मैं अब आपके, आपके धर्म की और आपके मुनियों की शरण लेता हूँ। मेरे अपराधों का क्षय होकर मैं उन सब पापों से मुक्त होऊँ, यह मेरी अभिलाषा है। पूर्वकृत पापों का मैं अब पश्चाताप करता हूँ। ज्यों-ज्यों मैं सुक्ष्म विचार से गहरा उतरता हूँ त्यों-त्यों आपके तत्वों के चमत्कार मेरे स्वरूप का प्रकाश करते हैं। आप नीरागी, निर्विकारी, सच्चिदानंद स्वरूप, सहजानंदी, अनंतज्ञानी, अनंतदर्शी और त्रैलोक्य-प्रकाशक हैं। मैं मात्र अपने हित के लिये आपकी साक्षी में क्षमा चाहता हूँ। एक पल भी आपके कहे हुए तत्त्वों की शंका न हो, आपके बताए हुए मार्ग पर अहोरात्र मैं रहूँ, यही मेरी आकांक्षा और वृत्ति हो!

हे सर्वज्ञ भगवन्! आपसे मैं विशेष क्या कहूँ? आपसे कुछ अज्ञात नहीं है। मात्र पश्चाताप से कर्मजन्य पाप की क्षमा चाहता हूँ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः!

18

उपासना की अखंड जागृति

हे परम कृपालु देव! जन्म, जरा, मरण आदि सर्व दु:खों का अत्यन्त क्षय करने वाला वीतराग पुरुष का मूल मार्ग, आप श्रीमद् ने अनंत कृपा करके मुझे दिया। आपके इस अनंत उपकार का प्रति-उपकार लौटाने मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। उस पर भी आप श्रीमद् कुछ भी लेने को सर्वथा निस्पृह हो। तो फिर, मैं मन-वचन-काया की एकाग्रता से आपके चरणारविंद में नमस्कार करता हूँ। आपकी परम भक्ति और वीतराग पुरुष के मूल धर्म की उपासना हमारे हृदय में भवपर्यंत अखंड रूप से जागृत रहे - यही प्रार्थना करता हूँ - जिसे आप सफल करें।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः !

Website:
www.srmdelhi.com

Watch Satsangs by SRI BEN PRABHU
www.youtube.com/srmissiondelhi